साक्षात्कार

अंक : 428-429
अगस्त-सितम्बर, 2015
संयुक्तांक

हिंदी की वैश्विकता

रेखा सेठी

भाषा को समाज में कई काम करने होते हैं। वह अभिव्यक्ति का माध्यम, संस्कृति का सेतु, अस्मिता का प्रतीक और संपर्क का साधन है। भाषायी अस्मिता का संबंध हमारे स्वाभिमान से है। अपनी भाषा के बिना कोई भी समाज सांस्कृतिक दास ही समझा जाएगा। इसीलिए अपनी भाषा की संभावनाएँ तलाशते रहना उस भाषा-भाषी वर्ग का उत्तरदायित्व है। इन अर्थों में भाषा साधन ही नहीं, स्वयं साध्य है। समाज और संस्कृति के अतिरिक्त बाज़ार और व्यापार से भी भाषा का गहरा संबंध है। भाषाओं के भी अपने बाज़ार-भाव होते हैं जो नित नए समीकरण रचते हैं। जैसे औपनिवेशिक दौर में अंग्रेज़ों का बाज़ार जिन सीमान्तों तक पसरा उनकी भाषा का सिक्का वहाँ चल पड़ा।

भूमंडलीकरण के वर्तमान समय में जब भारत और चीन की पहचान उभरती हुई अर्थ-व्यवस्थाओं के रूप में हो रही है तो यहाँ की भाषाओं के बाज़ार-भाव भी तेज हो रहे हैं और वैश्विक परिदृश्य पर उनका अभूतपूर्व विस्तार हो रहा है। आज चीन छोटे-मोटे खिलौनों से लेकर बड़े-बड़े इलैक्ट्रोनिक उत्पादों का निर्माता व संयोजक हो गया है। विश्व के सभी बाज़ार चीन की मुहर लगे सामान से लैस हैं। निश्चित है कि व्यावसायिक रिश्तों को निभाने के लिए चीन की भाषा मंडारिन सीखने वालों की संख्या आज अचानक बहुत बढ़ गई है। उधर चीन में भी भाषाओं की स्थिति नई करवट ले रही है। चीन पहले एक बंद समाज था जो सदियों से अपनी ही भाषा पर आश्रित रहा लेकिन आज वहाँ विश्व की अन्य भाषाएँ सीखने की ललक जाग गई है। आईटी-इंडस्ट्री में भारत की सफलता को देखकर आज चीनी नागरिक उत्साह से अंग्रेज़ी सीख रहे हैं। कहा जाता है वहाँ बड़े-बड़े स्टेडियम लेकर एक साथ बहुत से लोगों को अंग्रेज़ी की सिखाई जा रही है। हिन्दी सीखने का भी वहाँ बहुत जोश है।

भाषाओं को लेकर भारत की विशिष्ट स्थिति है। अपने देश में बाईस राष्ट्रीय भाषाएँ हैं। उसके अलावा अनगिनत बोलियाँ हैं। पढ़े-लिखे तबके में अंग्रेज़ी का

वर्चस्व है। इस बहुभाषी देश में अगर किसी एक भाषा को अखिल भारतीय स्तर की भाषा माना जा सकता है तो वह गौरव हिन्दी को प्राप्त है। भूमंडलीकरण और उदारवादी नीतियों के परिणामस्वरूप हिन्दी की स्थिति और मज़बूत हुई है। मीडिया, विज्ञापन और सिनेमा की दुनिया में हिन्दी की धूम मची हुई है। नब्बे के दशक में सूचना और संचार की क्रांति ने जिस मीडिया बूम को जन्म दिया उसके परिणामस्वरूप टेलीविज़न पर हिन्दी चैनलों की बाढ़ आ गई। आज हर बड़े मीडिया संस्थान के समाचार, मनोरंजन और फिल्मों से संबंधित हिन्दी में चलते हैं। अन्य भारतीय भाषाओं—पंजाबी, बांग्ला, उड़िया, तमिल, आदि के भी अपने-अपने चैनल हैं। इनकी संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है लेकिन कुल मिलाकर इस स्थिति का सबसे अधिक लाभ हिन्दी को ही मिला है।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों के भारत में प्रवेश से परस्पर प्रतिस्पर्धा का रूप अत्यंत आक्रामक हो गया। मोबाइल फोन, गाड़ियाँ, इलैक्ट्रॉनिक उपकरण, घरेलू उत्पाद, खान-पान में कोला, चॉकलेट आदि बनाने वाली कंपनियों के लिए भारत की एक अरब की आबादी उपभोक्ता संख्या की दृष्टि से लुभावना सौदा है। जब पेप्सी भारत आया तो उनका लक्ष्य था कि यदि भारत के पाँच प्रतिशत लोग भी हमारे उपभोक्ता बन जाते हैं तो हमारे लिए काफी होगा। आज पेप्सी, कोका कोला और अन्य सभी शीतल पेय से आगे भारत में सबसे ज़्यादा बिकने वाला ब्रांड बन गया है। बैंकों और बीमा के क्षेत्र में भी इन बड़ी कंपनियों में आपस में होड़ लगी हुई है। बाज़ार की इस स्थिति का सीधा संबंध भाषा से भी है। इन कंपनियों का उद्देश्य केवल भारत के संभ्रांत वर्ग को ही संबोधित करना ही नहीं था बल्कि उसे यहाँ के आम-आदमी से बात करनी थी जिस तक उसकी भाषा के माध्यम से ही पहुँचा जा सकता था। हिन्दी-क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से सबसे बड़ा क्षेत्र है। भारत के अन्य हिस्सों में भी जो भाषा बोली और समझी जाती है, वह हिन्दी ही है। हिन्दी की इस लोकप्रियता को विज्ञापन उद्योग ने सही समय पर समझा और अपनाया।

पीयूष पांडे और प्रसून जोशी—दो ऐसे नाम हैं जिन्होंने विज्ञापन की दुनिया में हिन्दी भाषा को स्थापित करने का काम किया। आज, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पीयूष पांडे एक जाना-माना नाम हैं। वे विज्ञापन उद्योग के सिरमौर हैं जिन्हें लाइफटाइम एचीवमेंट अवार्ड से सम्मानित किया गया और फ्रांस के कान समारोह में वे एशिया के एकमात्र सर्जक हैं जिन्हें ज्यूरी का अध्यक्ष होने का गौरव प्राप्त हुआ! पीयूष की प्रतिष्ठा का आधार उनके द्वारा निर्मित वे विज्ञापन हैं, जो अपने मिजाज़ में पूरी तरह भारतीय हैं। भारत की जनता से उनकी भाषा में बात करने का साहस पहली बार पीयूष पांडे ने ही किया।

यह उन दिनों की बात है जब पीयूष 'ओ एँड एम' विज्ञापन एजेंसी, में भाषा कॉपी लेखक का काम कर रहे थे। 'ओ एंड एम' एक अंतरराष्ट्रीय विज्ञापन एजेंसी है और भारत में पिछले कई वर्षों से वह पहले स्थान पर रही है। भाषा कॉपी लेखक की हैसियत से उनका काम अंग्रेज़ी में लिखी विज्ञापन कॉपी का हिन्दी अनुवाद करना भर था। उन दिनों, विज्ञापन की दुनिया पर अंग्रेज़ीयत छाई हुई थी। पीयूष ने अंग्रेज़ी में मिली कॉपी को फाड़कर फेंक दिया और हिन्दी में एक नई कॉपी लिखी जिससे हम परिचित हैं 'दम लगा के हऽऽयशा—यह फेविकोल का जोड़ है, टूटेगा नहीं/ फेविकोल ऐसा जोड़ लगाए अच्छे से अच्छा न तोड़ पाए/ फर्नीचर का साथी जिसकी निशानी है हाथी' सीधी-सादी भाषा में लिखी गई इस विज्ञापन कॉपी को क्लाइंट की स्वीकृति मिलेगी, इसमें सबको संदेह था लेकिन यह कॉपी चुनी गई और अगले दस साल तक चलती रही। इसके बाद पीयूष पांडे द्वारा रचित प्रसिद्ध विज्ञापनों की झड़ी ही गई गई—राष्ट्रीय एकता के लिए, 'मिले सुर मेरा तुम्हारा, तो सुर बने हमारा', कैडबरी चॉकलेट के लिए, 'कुछ खास है हम सभी में' और एशियन पेंट्स के लिए, 'हर घर कुछ कहता है', हिन्दी भाषा के माध्यम से अपने भावनात्मक काव्यात्मक अंदाज़ में पीयूष हर दिल को छू रहे थे।

पीयूष पांडे की प्रेरणा से प्रसून जोशी इस क्षेत्र में दाखिल हुए। 'ठंडा मतलब कोका कोला', 'पियो सिर उठा के', 'सच दिखाते हैं हम' 'दो बूँद जैसी पंक्तियाँ लिखने वाले प्रसून की सबसे बड़ी विशेषता भारतीय मानसिकता और भाषा पर उनकी गहरी पकड़ ही है। विज्ञापनों में हिन्दी की बढ़ती लोकप्रियता पर प्रसून का विचार है कि इसका बहुत बड़ा कारण भारतीय मध्यवर्ग का नया आत्मविश्वास है। उनका मानना है कि आर्थिक उदारीकरण की नीतियों ने विशेषत: मध्यवर्ग में एक नया भरोसा जगाया है। औपनिवेशिक जकड़बंदियों को तोड़कर अपनी अस्मिता और अपनी भाषा के प्रति वे आज अधिक आश्वस्त महसूस करते हैं। इस तर्क में अवश्य ही कुछ सच्चाई है तभी तो विज्ञापन की चुस्त चमकीली हिन्दी को नई पीढ़ी ने बड़े चाव से अपनाया है।

हिन्दी फिल्मों का भी युवाओं पर कम असर नहीं है। अहिन्दी भाषी प्रदेशों में भी हिन्दी फिल्में सुपरहिट रहती हैं। हमें यह स्वीकार करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि हिन्दी प्रसार में बॉलीवुड का बहुत बड़ा योगदान है। बॉलीवुड में बनी हिन्दी फिल्में सिर्फ भारत में ही प्रदर्शित नहीं होती, अमरीका, ब्रिटेन, सिंगापुर, मलेशिया, ऑस्ट्रेलिया, मध्यपूर्व एशियाई देश सब जगह बड़े पैमाने पर रिलीज़ की जाती हैं। कई फिल्मों के प्रीमियर, अवार्ड फंक्शन, इन अलग-

अलग देशों में होते हैं। बड़ी-बड़ी फिल्में विदेशों में फिल्माई जा रही हैं। अधिकांश फिल्मों के निर्माण पर करोड़ों रुपया खर्च होता है और उसी सफलता की कसौटी भी बॉक्स-ऑफिस पर होने वाली कमाई है। बॉक्स-ऑफिस पर सौ करोड़ कमाने वाली फिल्मों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। इस सौ करोड़ का एक बड़ा प्रतिशत विदेशी बॉक्स-ऑफिस की खिड़कियों पर इकट्ठा होता है। शाहरुख, सलमान, ऋतिक दुनिया के बड़े सितारे हो गए हैं। कई विदेशी अभिनेत्रियाँ हिन्दी सिनेमा के रूपहले पर्दे पर अपनी किस्मत आज़माने को लालायित हैं। कटरीना कैफ़ को मिली सफलता ने औरों को भी इस ओर प्रेरित किया है।

मीडिया, विज्ञापन, सिनेमा-सभी लोकप्रिय, संस्कृति, पॉपुलर कल्चर की अभिव्यक्तियाँ हैं। इन्होंने मिलकर हिन्दी भाषा के मानचित्र का अभूतपूर्व विस्तार किया है लेकिन यह भी सच है कि यह हिन्दी वह नहीं हैं जो साहित्य और संस्कृति की भाषा है या फिर जिसे हमने राजभाषा के रूप में प्रस्तावित किया था। यह उस नई पीढ़ी की फैशनेबल हिन्दी है जिसे अब हिन्दी में बात करना, एस.एम.एस. भेजना, चुटकुले सुनाना, ठहाके लगाना सब 'सुपर कूल' लगता है। उनकी अपनी एक दुनिया है जिसमें हिन्दी फिल्में, इंडी पॉप गाने, जीन्स पर भारतीय ढब के कुर्ते सब भले लगते हैं। ये भाषाओं में भी खुले मन के आग्रही हैं जो भाषा के बड़े व्यक्तिगत प्रयोग करते रहते हैं। वहाँ हिन्दी का अंग्रेज़ीकरण और अंग्रेज़ी का हिन्दीकरण होता रहता है। भाषा वैज्ञानिक शब्दावली में यह भाषा संकर की स्थिति है जिसमें कोड-मिश्रण और कोड-अंतरण बराबर चलता रहता है।

कठिन प्रश्न यह है कि हिन्दी की इस विकासधारा को कैसे स्वीकार किया जाए? एक वर्ग जितने उत्साह से इसे अपना रहा है दूसरा वर्ग उतनी ही शिद्दत से इसके ख़तरों के प्रति सचेत करता हुआ सावधान कर रहा है। डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय लिखते हैं कि बाज़ार का मुख्य लक्ष्य ही है कि कैसे हिन्दी को बाज़ार की भाषा बनाया जाए। उनके शब्दों में, 'इसलिए विज्ञापनों में, दूरदर्शन धारावाहिकों में अन्य प्रचार-विधियों में हिंदी के बढ़ते प्रयाग से खुश होने की जरूरत नहीं है, क्योंकि इस प्रक्रिया में हिंदी के साथ जो खेल खेला जा रहा है वह रोंगेटे खड़े करने वाला है, उसे ज्ञान-विज्ञान-संस्कृति-सृजन से काटकर बाज़ार की भाषा के रूप में ढालने के प्रयास में उसके भीतर जो मिलावट की जा रही है, जितनी तरह से उसे भ्रष्ट किया जा सकता है, किया जा रहा है, वह हिंदी की जड़े काट रहा है। इस बाज़ारू भाषा से हिंदी का कोई भला नहीं हो रहा है, बल्कि बाज़ार को ही लाभ मिल रहा है, जो उसका लक्ष्य है भी। भाषा तो तभी लाभान्वित होती है, जब वह अपनी जड़ों से जुड़कर अपनी सांस्कृतिक-बौद्धिक-सर्जनात्मक संपदा का संरक्षण करती हो और उसे बढ़ाती हो। परंतु बाजार ने अपने उपयोग के लिए हिंदी को सबसे पहले उसके लिखित रूप से अलग किया, उसे उसने सिर्फ़ बोलचाल की भाषा में बदल दिया, फिर उस बोलचाल की भाषा को अपनी उपभोक्ता संस्कृति से जोड़ने के लिए तोड़-मरोड़कर अनेक तरह की मिलावटों से बाजार की भाषा में बदल डाला।'

साहित्यकार उदय प्रकाश ने भी विज्ञापन और भाषा में तनावपूर्ण संबंध पर टिप्पणी करते हुए अपनी आपत्ति दर्ज की। 'ठंडा मतलब कोका कोला' को उद्धृत करते हुए उन्होंने कहा कि 'उसमें एक ब्रांड के लिए, एक सॉफ्ट ड्रिंक के ब्रांड के लिए पूरे मानवीय अनुभव को, आस्वाद को विसर्जित कर दिया गया है। ठंडा का मतलब सिर्फ कोका-कोला है, इस तरह का आरबिटरेरीनेस, इस तरह की तानाशाही बाज़ार की भी, ब्रांड की भी यह कॉरपोरेट एडवर्टाइजिंग, करता है—और साहित्य, सृजनात्मक कलाएँ इस तरह की तानाशाही के विरुद्ध हमेशा संघर्ष करती हैं।' साहित्य में शब्दों का संबंध मानवीय सरोकारों से है जबकि बाज़ार में भाषा का लक्ष्य भी मुनाफ़ा ही है। बाज़ार अन्य वस्तुओं की तरह भाषा का इस्तेमाल भी अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए ही करता है।

यह सच है, कि बाज़ार की ताकतों और व्यावसायिक दबावों ने हिन्दी भाषा की नई संभावनाओं को तलाशा है लेकिन साथ ही यह भी सच है कि अपने मुनाफे के लिए बाज़ार ने उसके खुलेपन से खिलवाड़ भी किया है। निश्चित व्यावसायिक उद्देश्यों से बँधी होकर यह भाषा हर नियम से विचलन करती है, चाहे वह व्याकरण का हो या अर्थ-संप्रेषण का। भाषा संप्रेषण तो बनती है लेकिन अर्थवत्ता खो बैठती है। केवल शब्दों का शोर बचा रह जाता है। भाषा के प्रति भाषिक समाज का एक उत्तरदायित्व होता है उससे बाहर जाकर जब हम भाषा का मनमाना प्रयोग करते हैं तो उससे भाषा की स्वतंत्र अस्मिता खंडित होती है। बाज़ार में हिन्दी का जो रूप व्याप्त है वह तीखा, आक्रामक, चटकीला अवश्य है लेकिन उसमें हमारे संवेदन-तंत्र को आंदोलित करने की क्षमता नहीं है।

विचार के इन दो ध्रुवांतों से अपनी-अपनी जगह सहमत होते हुए भी हमें यह स्वीकार करना होगा कि किसी भी संपन्न भाषा के विकास की अनेक दिशाएँ हो सकती हैं। यदि भाषा को केवल साहित्य और संस्कृति की वाहक के रूप में सीमित कर दिया जाए तो उसका प्रचलन एक स्तर तक ही हो सकता है। आज हमारे सामने कई चुनौतियाँ है। हिन्दी के विकास की सबसे बड़ी दिशा माध्यम भाषा के रूप में उसका विकास है। भारत में भाषा का प्रश्न एक लंबे समय से सामाजिक न्याय का प्रश्न हुआ है। हिन्दी भाषियों का एक

भारत में स्थित बहुराष्ट्रीय कंपनियों में काम के लिए बाहर से आने वाले लोग भी हिन्दी सीख रहे हैं। पिछले कुछ सालों में भारत के विश्वविद्यालयों में विदेशों से आने वाले छात्रों की संख्या बहुत बड़ी है। ये सभी हिंदुस्तान में रहते हुए हिन्दी ज़बान सीख रहे हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय और केन्द्रीय हिंदी संस्थान जैसी संस्थाओं में हिन्दी सीखने वाले विदेशी छात्रों की संख्या निरंतर बढ़ रही है।

बड़ा वर्ग राष्ट्रीय मुख्यधारा से इसलिए बाहर रहता आया कि ऊँचे पदों पर हमेशा अंग्रेज़ी जानने वालों का वर्चस्व रहा। उच्च शिक्षा के सभी संस्थान जो इंजीनियरिंग, मेडिकल मैनेजमेंट आदि की शिक्षा देते हैं वहाँ माध्यम अंग्रेज़ी है। इन सभी क्षेत्रों में यदि कुछ संस्थान हिन्दी माध्यम के हों तो बहुत से उन छात्रों को लाभ होगा जिन्हें दोहरा संघर्ष करना पड़ता है, विषय के साथ भी और माध्यम भाषा के साथ भी। हमें हिन्दी को इन सब विषयों के ज्ञान का माध्यम बनने के लिए तैयार करना है। परिवर्तन की कुछ आहट मिलने लगी है। हमारे उच्च न्यायलयों एवं उच्चतम न्यायालय की भाषा भी अंग्रेज़ी है। सभी फैसलों के प्राधीकृत पाठ अंग्रेज़ी के ही माने जाते है लेकिन अब हिन्दी भाषी प्रदेशों में ऐसे वकीलों की जमात खड़ी होकर माँग कर रही है कि पैरवी की सारी कार्यवाही वे अपनी भाषा में करना चाहते हैं। हमें ऐसे प्रयत्नों की सराहना करनी चाहिए जिससे उन्हें व्यापक सामाजिक स्वीकृति मिले।

हिन्दी में जब गद्य लेखन का शुरुआती दौर था तब संस्कृत अंग्रेज़ी, बांग्ला आदि भाषाओं से हिन्दी में बहुत से अनुवाद हुए। अनुवाद भाषाओं के बीच संवाद का काम करते हैं। इससे ज्ञान-संपदा का विस्तार होता है। आज, साहित्य के क्षेत्र में तो बहुत-से अनुवाद हो रहे हैं, जिनका स्वागत है, ज्ञान के अन्य क्षेत्रों में भी यह आदान-प्रदान होना ज़रूरी है। हिन्दी के समक्ष एक और बड़ी चुनौती तकनीक के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने की है। सूचना प्रौद्योगिकी आज जीवन के पूरे वितान पर छाई हुई है, जो भाषाएँ उसके साथ अपना विस्तार करेंगी वही जीवित रहेंगी। हिन्दी को भी तकनीक के साथ अपनी साझेदारी निभानी है। इस दिशा में कुछ आरंभिक प्रयत्न हुए हैं। लेकिन अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

अलग-अलग अनुमानों के अनुसार आज विश्वभर में हिन्दी जानने और बोलने वालों की संख्या लगभग अस्सी करोड़ पहुँच गई है। इनमें वे भारतीय भी हैं जो कनाडा, अमरीका, योरोप, दक्षिण एशिया, मध्य-पूर्व एशियाई देशों में नौकरियाँ करने गए और बस गए। भले ही वहाँ उनका काम-काज अंग्रेज़ी में होता है लेकिन उनके साथ हिन्दी भाषा, हिन्दी फिल्में वहाँ पहुँची हैं। मॉरीशस, फिजी, ट्रिनीडाड, टोबैगो जैसे देश तो पहले से ही हिन्दी भाषियों के देश हैं।

भारत में स्थित बहुराष्ट्रीय कंपनियों में काम के लिए बाहर से आने वाले लोग भी हिन्दी सीख रहे हैं। पिछले कुछ सालों में भारत के विश्वविद्यालयों में विदेशों से आने वाले छात्रों की संख्या बहुत बड़ी है। ये सभी हिंदुस्तान में रहते हुए हिन्दी ज़बान सीख रहे हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय और केन्द्रीय हिंदी संस्थान जैसी संस्थाओं में हिन्दी सीखने वाले विदेशी छात्रों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। विदेशों में हिन्दी सिखाने के कई केन्द्र खुल गए हैं। इस स्थिति में जबकि हिन्दी भाषा का मानचित्र इतना विस्तृत हो रहा है और उसके भाषिक विकास को एक नई गति मिल रही है तब तरह-तरह की आशंकाओं के कारण उसकी गति को अवरुद्ध करना ठीक न होगा। भाषा को लेकर शुद्धतावादी आग्रह भी भाषाओं का भला नहीं करते। परिवर्तन का दौर कभी भी सुखद नहीं होता। जब हिंग्लिश या हिंग्रेज़ी का फैशन चला था तो डर था कि ऐसी खिचड़ी भाषा हमें कहाँ ले जा रही है पर समय के साथ-साथ वह मद्धिम पड़ गया। आज की बोलचाल की हिन्दी में भारतीय भाषाओं के अनेक शब्द घुलमिल गए हैं। ज़बरदस्ती ठूँसी गई अंग्रेज़ी या अंगज़ी के वाक्य-विन्यास को पूरे जन-समाज की स्वीकृति नहीं मिली। यह एक अच्छा लक्षण है। परिवर्तन की प्रक्रिया से छन-छनकर ही भाषाएँ गतिशील बनी रहती है और यही गतिशीलता उनका प्राण है। हिन्दी भाषा भी विश्व-परिदृश्य में अपनी नई पहचान बना रही है। उसका स्वरूप कैसा होगा यह आज निश्चित नहीं हो सकता लेकिन उसकी सकारात्मक संभावनाएँ अवश्य दिख रही हैं, जो स्वागत-योग्य है।

e-mail : reksethi@gmail.com